माया वर्मा के साहित्य में राष्ट्रवाद की प्रवृतियों का अध्ययन

अजब सिंह
शोधार्थी हिन्दी विभाग
जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर म.प्र.

रचनाधर्मिता का अर्थ है रचना का धर्म या उद्देश्य। सोपान का सामान्य अर्थ है सीढ़ियाँ माया जी के काव्य में रचनाधर्मिता के सोपान में समाज की घटनाओं व कुरीतियों का महत्वपूर्ण योगदान है।

माया जी समाज के प्रति प्रतिबद्ध थीं और समाज की भटकी हुई युवा पीढ़ी को राह दिखाना चाहती थीं इसीलिये उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु साहित्य लेखन की राह– चुनी। माया वर्मा जी का झुकाव बचपन से ही साहित्य में था और उन्होंने अल्पायु में ही मैथलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, रवीन्द्रनाथ टैगौर, तुलसीदास जयशंकर प्रसाद जी जैसे अन्य विद्वानों का साहित्य पढ़ लिया था। इसीलिये माया जी के बाल मन पर इस सभी के विचारों का प्रभाव हुआ और उन्होंने भी साहित्य लेखन की शुरूआत की।

मुख्य बिन्दू–
रचनाधर्मिता, साहित्य, सोपान, सीढ़ियाँ, घटनाओं, कुरीतियों, महत्वपूर्ण, प्रतिबद्ध, अल्पायु, झुकाव।

माया जी के साहित्य में सामाजिक घटनाओं व परम्पराओं को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी संदर्भ में माया जी आमंत्रण शीर्षक कविता में देश के वीर जवानों को आमंत्रित करते हुए कहती हैं–

इसी प्रकार कवयित्री समाज में हो रहे भेदभाव व अन्य बुराईयों के प्रति युवा वर्ग को जागरूक करना चाहती हैं और संदेश देती हैं कि लड़की और लड़के के भेद को मिटा दो अथवा भेदभाव रूपी कारागार को तोड़ दो। जिससे हमारा समाज व देश सर्वोन्नति की ओर कदम बढ़ाए। और जो पहले एक दुःशासन था आज वैसे अनेकों दुःशासन समाज में फैले हुए अन्याय व दुराचार कर रहे हैं इसीलिए वर्तमान में हमें अनेक अर्जुन और भीम जैसे वीर युवाओं की आवश्यकता है।

कल था एक, हजारों दुःशासन अब यहाँ लाज हरते हैं।

कल था एक आज शत दुर्योधन माँ को पीड़ित करते हैं।

हमें चाहिए लाखों अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, वीर–महान।

देशवासियों बनो सही अर्थों में तुम प्यारी, मनु की संतान।।

नवयुवकों को प्रोत्साहित करते हुए माया वर्मा जी श्दुनियाँ नई बसायेंगे' कविता में लिखती हैं

हम नव जागृति के कर्णधार हैं दुनियाँ नई बसायेंगे।

सबको अपना ही समझेंगे, जन जन को गले लगायेंगे।।

पाश्चात्य शिक्षा एवं सभ्यता ने विश्व भर के पारिस्थितिकी संतुलन को अव्य वस्थित कर दिया है। अतएव यदि हम अपने पर्यावरण को संतुलित रखना चाहते हैं तो भारतीय संस्कृति को आधार बनाकर नए संस्कारों के निर्माण की परम आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति का आधार निष्काम कर्म एवं स्थितप्रज्ञता के आदर्श स्थापित करता है। हमारी आज की दुखद स्थिति पाश्चात्य देशों के अंधानुकरण का परिणाम है। हम सदैव सुख एवं संतोष में विश्वास करते आए हैं। फिर भला स्वार्थी की भौतिक संस्कृति के चक्कर में आकर अपने मार्ग से

क्यों भटकें? हम गुमराह हुए, तभी तो पर्यावरण के असंतुलन से पैदा होनेवाले खतरे हमारे माथे पर मंडरा रहे हैं। पश्चिमी देशों की विलासी प्रवृत्तियों को जब अन्य देश अपनाते हैं, तो सामाजिक प्रदूषण में उनका सहयोग भी बढ़ जाता है। अब अमेरिका जैसा देश भी अपनी भौतिक सभ्यता एवं सामाजिक मूल्यों से घुटन जैसे वातावरण का अनुभव कर रहा है और वहाँ के निवासी आत्मसंतुष्टि हेतु भारत की ओर निरंतर पलायन कर रहे है। भौतिकवादी संस्कृति से सामाजिकता का विकास नहीं हो पाता–यही कारण है कि अमेरिका जैसे विकसित देशों में आज अपराध–वृत्ति में तेजी से वृद्धि हो रही है।

"प्रदूषण फैलने का मुख्य कारण औद्योगीकरण व प्रौद्योगिकी नहीं, बल्कि दूषित मानसिकता ही है जो पश्चिमी शिक्षा प्रणाली से निकली है। आज बड़े–बड़े विश्व विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा व्यावसायिक महाविद्यालयों की स्थापना तो हो गई है, परंतु इनके विस्तृत भवनों के निर्माण मात्र से मस्तिष्क के भाव तो नहीं बदल जाएँगे! आज वास्तव में मानव के मस्तिष्क के भाव सिकुड़ गए हैं। भौतिक सुख पाने के लिए भीतरी चरित्र की बलि चढ़ा दी गई है। असली शिक्षा वह है जो संपूर्ण मानव जाति के कल्याण की बात सोचे। और ऐसी शिक्षा की जड़ें भारत की पुरानी परिपाटी में ही निहित हैं।"[1]

विकास एवं औद्योगीकरण को रोकने से प्रदूषण को रोका नहीं जा सकता, बल्कि दूषित एवं स्वायंलोलुप मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने की ही अधिक आव श्यकता है। मानव जिस कार्य को करने जा रहा है, उससे पूर्व सही दिशा ग्रहण करना सर्वाधिक आवश्यक है। सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों में आनेवाली विकृति से सचेत रहकर ही इस दिशा में सफल प्रयास किया जा सकेगा। भारतीय शिक्षा– जिसमें मानवता एवं मानवीय दृष्टिकोण का समावेश है– की आज सर्वत्र आवश्यकता है। **"वर्तमान कुंठित मनोवृत्ति का उपचार तो भारतीय शिक्षा**

प्रणाली के अध्ययन–अध्यापन से ही संभव है। लोग अपने भविष्य का निर्माण सही तरीके से कर सकें, वर्तमान जीवन उचित तरीके से जी सकेंकृयही उसका उद्देश्य है। तेजी से उभरनेवाली संस्कृतियों का पतन निश्चितप्राय माना जाता है; परंतु भारतीय संस्कृति–जिसे गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने अरण्य संस्कृति कहा है सदा शाश्वतता प्रदान करने वाली संस्कृति है, स्वच्छ चितन की संस्कृति है, सच्चे अर्थों में मानव संस्कृति है। ऐसी शिक्षा का उद्‌गम अंग्रेजी शिक्षा के स्कूलों में नहीं, बल्कि भारतीय आदर्श विद्यालयों में ही संभव है।"[2]

पर्यावरण एक संपूर्ण विज्ञान और मानवीय क्रियाओं के संपूर्ण मिश्रण को कहा जा सकता है। इसलिए पर्यावरणीय व्यवस्था का उद्देश्य पारिस्थितिकी संबंधी सभी कारणों का ध्यान एवं स्वयं पर्यावरण द्वारा डाले गए दबाव पर निर्धारित किया कलापों की व्यवस्था होना चाहिए। पृथ्वी के संसाधनों के लगातार ह्रास से हम बहुत–सी हानियाँ बर्दाश्त कर रहे हैं जो हमारी प्रकृति के लिए खतरा हैं। पिछले दशकों में विभिन्न कारणों से हुई जंगलों की कटाई ने पहाड़ियों में तोड़–फोड़ की क्रियाओं को बढ़ावा दिया है। रेगिस्तानी क्षेत्र में तेज हवाओं से रेगिस्तान के एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर परिवर्तित होने के फलस्वरूप यातायात एवं परि बहन–व्यवस्था गंभीर रूप से प्रभावित हुई है। खनिज पदार्थों को प्राप्त करने के उद्देश्य से की गई खुदाई से पृथ्वी में बहुत से ऐसे स्थान बन गए हैं, जो पर्यावरण को बिगाड़ने में सहायता करते हैं। यह समस्या उन स्थानों पर भी अधिक पाई जाती है, जहाँ इमारतें बनाने के लिए धरती की ऊपरी सतह पर खुदाई की जाती है तथा सीमेंट फैक्टरी के लिए चूना पत्थर निकाला जाता है। यू. एन. ओ. के पर्यावरण कार्यक्रम में जनसंख्या, संसाधन विकास एवं पर्यावरण के पारस्परिक संबंध को उजागर किया गया है। यदि सामाजिक और आर्थिक लाभ के लिए नए स्रोतों की खोज की जाती

है, तो यह सुरक्षित पर्यावरण को दृष्टि में रखकर की जानी चाहिए। हम इसे नियंत्रित विकास या निम्नतम विनाश पर आधारित विकास कह सकते हैं। पर्यावरण सुधार का उद्देश्य वन एवं चारागाहों का संरक्षण और रेगिस्तान के विकास को रोकना, पृथ्वी एवं जल संसाधनों के अत्यधिक दोहन पर रोक लगाना तथा पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकना होना चाहिए। अतः सुरक्षित पर्यावरणीय व्यवस्था उसे कहा जा सकता है, जो विभिन्न उपयोगों के लिए, सीमित साधनों का प्राथमिकता के आधार पर बँटवारा कर सके। इस प्रकार के बँटवारे की आवश्यकता आर्थिक आधार पर है और यह सीमित प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखते हुए पर्यावरण के विनाश को नियंत्रित करती है। पर्यावरणीय व्यवस्था केवल पर्यावरण की व्यवस्था ही नहीं है, परंतु पर्यावरण एवं विभिन्न क्रिया–कलापों द्वारा डाले गए सहन योग्य दबावों की व्यवस्था है। इसमें पारिस्थितिकी संबंधी कारणों का भी ध्यान रखा जाता है।

आज समय की मांग है कि पारिस्थितिकी–संतुलन के विकास हेतु सरकारी तंत्र के अतिरिक्त छात्रों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं को भी अहम् भूमिका निभानी चाहिए। इन गैर–सरकारी संस्थाओं एवं नौजवान विद्यार्थियों का यह उत्तरदायित्व है कि वे पारिस्थितिकी तंत्र व पारिस्थितिकी व्यवस्था के प्रसंग में ज्ञान एवं प्रशिक्षण प्रदान करने की मुकम्मिल व्यवस्था करें, ताकि पारिस्थितिकी तंत्र के असंतुलित होने से मानव समाज पर होनेवाले दुष्प्रभावों के बारे में अवबोध कराया जा सके। गैर सरकारी संस्थाएँ इस अभियान में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकती हैं। इन्हें समाज व सरकार के बीच, पारिस्थितिकी के प्रति सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने का कार्य सुगमता से सौंपा जा सकता है।

"विभिन्न व्यवसायों में संलग्न व्यक्ति जिन्हें अपने व्यावसायिक क्षेत्र में दक्षता प्राप्त हो और जो पर्यावरण को संतुलित रखने में परोक्ष

एवं अपरोक्ष रूप से कुछ करने की इच्छा–आकांक्षा रखते हों, उन्हें अपने ज्ञान का उपयोग पर्यावरण के सुधार एवं संवर्धन में करना चाहिए। इस हेतु ऐसे विशिष्ट लोगों के दल बनाए जाने चाहिए जो गांव–गांव, शहर–शहर में शिविर आदि लगाकर अपने अनुभवों से जनसामान्य को परिचित करा सकें।''[3] ये लोग ज्ञान विशेष में विशिष्टता हासिल करनेवाले सामाजिक प्राणी हैं, अतः उन्हें व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलांजलि देकर शुद्ध पर्यावरण को बनाने में पहल करनी चाहिए। इनकी इस समाज सेवा से) प्रदूषण से होने वाले दुष्प्रभावों से बचा जा सकेगा और उनके व्यक्तिगत जीवन में भी शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता का आभास रहेगा। ऐसे कार्य वैज्ञानिकों, भौतिक वैज्ञानिकों टेक्नालॉजिस्टों, डॉक्टरों, वकीलों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, आर्थिक विश्लेषकों, इंजीनियरों, अध्यापकों आदि द्वारा दिल खोलकर किए जाने चाहिए। इन लोगों का समाज तथा सरकार दोनों से संबंध रहता है, अतः इनके प्रयासों को आवश्यक मान्यता मिल जाती है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा गरीब, अनपढ़ एवं परंपरावादी जड़ विचारों से घिरी जनता को तर्कसंगत विधि से समझाया जा सकता है। वे लोगों को बता सकते हैं कि यदि प्रकृ ति में प्रदूषण फैलता है तो प्रकृति भी प्रतिक्रिया के रूप में मानव जाति को कष्टमय स्थिति में डाल सकती है; अतः पर्यावरण को संतुलित एवं व्यवस्थित रखकर ही मानव के उज्ज्वल भविष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है। आज विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण को संतुलित करने हेतु कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। आवश्यकता है इन कार्यक्रमों को पुनरू गठित करने एवं ठोस परिणामों तक पहुँचाने की।

इस विश्वव्यापी पारिस्थितिकी समस्या से विश्व का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रह गया है। प्रकृति की वर्तमान दुर्दशा मांग करती है कि सभी स्तरों पर जोरदार कदम उठाकर स्वस्थ पर्यावरण को बनाए रखने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी जाए, जिससे हमारी अच्छी अर्थव्यवस्था

की शुरुआत हो सके। यह व्यवस्था वर्तमान में ही नहीं, बल्कि हमारे भविष्य में भी आनेवाली पीढ़ियों के लिए उपादेय सिद्ध होगी। इकोनॉमी एवं इकोलॉजी के संरक्षण हेतु समानांतर दृष्टि का विकास करना ही हमारे वर्तमान एवं भविष्य के लिए उपयोगी रहेगा।

संदर्भ सूची

1. व्यास हरिश्चंद्र, पर्यावरण शिक्षा, विद्या विहार, नई दिल्ली, संस्करण–2007, पृष्ठ–282
2. व्यास हरिश्चंद्र, पर्यावरण शिक्षा, विद्या विहार, नई दिल्ली, संस्करण–2007, पृष्ठ–283
3. व्यास हरिश्चंद्र, पर्यावरण शिक्षा, विद्या विहार, नई दिल्ली, संस्करण–2007, पृष्ठ–284

Contributors Details:

अजब सिंह
शोधार्थी हिन्दी विभाग
जीवाजी विश्वविद्यालय
ग्वालियर म.प्र.